

शक्ति की एकदेश व्यक्ति ही सम्यक्त्व है

अरे भाई ! इस आनंद के स्वाद के सामने इन्द्र के भोग और चक्रवर्ती का वैभव घास के जीर्ण तिनके जैसे तुच्छ भासित होते हैं। सम्यग्दृष्टि इन्द्र को इन्द्राणी के भोग सड़े हुये घास के तिनके की तरह भासित होते हैं। ज्ञानी को भी उन विषयों के प्रति राग उत्पन्न तो होता है; किन्तु उसमें उन्हें दुःखरूप स्वाद ही प्रतीत होता है। ज्ञानी को जो विषय-वासना का राग आता है, वह उन्हें काले नाग की तरह दुःखदायी लगता है। अज्ञानी को जिसमें सुख भासित होता है, वे विषयभोग ज्ञानी को रोग जैसे लगते हैं। भाई ! सम्यग्ज्ञान कोई अलौकिक वस्तु है, यह कहीं बाहर की पण्डिताई से प्राप्त होने की चीज नहीं है।

अहा ! आत्मा को तो एक मात्र मधुर स्वाद ही है और कषायों का स्वाद इससे भिन्न कषायला है - ऐसा ज्ञानी को स्पष्ट भासित होता है। शुभाशुभ राग का स्वाद आकुलतामय है। यह चैतन्यरस के स्वाद से भिन्न बेस्वाद नीरस है। शुभभाव हो या अशुभभाव - ये सब आत्मा के कषायले-कलुषित परिणाम हैं। पहले भी यह सब सुनने को तो मिला, किन्तु आज तक कभी स्वभावसन्मुख दृष्टि नहीं की। राग के साथ एकत्व मानकर विकल्प ही किये; किन्तु यह सब तो अज्ञान है। इससे भिन्न अत्यन्त मधुर चैतन्यरस ही अपनी चीज है। उसके साथ राग के कलुषित भाव का एकत्व करना अज्ञान है - ऐसा ज्ञानी जानता है।

देखो ! सर्वज्ञ परमात्मा अरहंत देव को ज्ञान की दशा परिपूर्ण विकसित हो गई है। एकसमय की ज्ञान की अवस्था जो केवलज्ञानरूप है, उससे केवली तीन लोक व तीन काल की समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एकसाथ जानते हैं - ऐसा कहना असद्भूत व्यवहारनय है; क्योंकि भगवान को जो केवलज्ञान प्रकट हुआ है, वह स्वयं से प्रकट हुआ है, लोकालोक से नहीं हुआ। इसप्रकार भगवान को दर्शन, ज्ञान, सुख एवं वीर्य स्वरूप अनन्त चतुष्टय प्रकट हो गया है। शक्तिरूप से तो सर्व जीव अनंत चतुष्टयमय ही हैं; परन्तु जिसको शक्ति की परिपूर्ण व्यक्ति पर्याय में होती है, वह सर्वज्ञ है। तथा उस शक्ति का पर्याय में एकदेश व्यक्त होने का नाम सम्यग्दर्शन है।

- प्रवचनरत्नाकर भाग-4, पृष्ठ -88-89

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 20

234

अंक : 6

अष्टपाहुड पद्यानुवाद

शीलपाहुड

- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शील गुण मण्डित पुरुष की देव भी सेवा करें ।
ना कोई पूछे शील विरहित शास्त्रपाठी जनों को ॥17॥
हों हीनकुल सुन्दर न हों सब प्राणियों से हीन हों ।
हों वृद्ध किन्तु सुशील हों नरभव उन्हीं का सफल है ॥18॥
इन्द्रियों का दमन करुणा सत्य सम्यक् ज्ञान तप ।
अचौर्य ब्रह्मोपासना सब शील के परिवार हैं ॥19॥
शील दर्शन-ज्ञान शुद्धि शील विषयों का रिपू ।
शील निर्मल तप अहो यह शील सीढ़ी मोक्ष की ॥20॥
हैं यद्यपि सब प्राणियों के प्राणघातक सभी विष ।
किन्तु इन सब विषों में है महादारुण विषयविष ॥21॥
बस एक भव का नाश हो इस विषमविष के योग से ।
पर विषयविष से ग्रसितजन चिरकाल भववन में भ्रमों ॥22॥
अरे विषयासक्तजन नर और तिर्यग् योनि में ।
दुःख सहें यद्यपि देव हों पर दुःखी हों दुर्भाग्य से ॥23॥
जिसतरह तुष के उड़ाने से अरे कुछ जाता नहीं ।
विषयसुख को उड़ाने से शीलगुण उड़ता नहीं ॥24॥

उसे 10 लाख करने की इच्छा होती है। यदि 10 लाख हों तो उसे 20 लाख करने की इच्छा होती है – इसीकारण दुःखी रहता है। जगत की वस्तुयें आती हैं और चली जाती हैं, उनमें जीव कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता। परद्रव्य के जो परमाणु आना हों, वे आते हैं और जो जाना हों वे जाते हैं, उनको जीव रोक नहीं सकता, टाल नहीं सकता।

मनुष्य की तृष्णा का पार नहीं है, वह बढ़ते-बढ़ते विश्व जितनी हो जाती है, तृष्णा का खड्डा कभी पूरा नहीं भरता (होता)। यदि भोग भोगने पर संतोष हो जाये तो तृष्णा का अंत हो जाये; परन्तु ऐसा कदापि बनता ही नहीं है; इसलिये आचार्य कहते हैं कि धन-कमाने में पाप है, रखने में पाप है, भोग भोगने में अतृप्ति-आसक्ति है और अंत में दुःख होता है। इसी बात को सिद्ध करने के लिये आचार्य दृष्टान्त देते हैं कि – कदाचित् घास और लकड़ियों के ढेर से अग्नि तृप्त हो जाये, सैकड़ों नदियों के पानी से समुद्र तृप्त हो जाये; परन्तु इस अज्ञानी की भोगों के प्रति आसक्ति का अन्त नहीं आता और तीव्र तृष्णा में मरकर नरक चला जाता है।

मूर्ख को भोग में मिठास का वेदन होता है। यदि किसी कारणवश धंधा न हो पाये तो पूर्व में स्वयं के द्वारा किये हुये को याद करके बड़ा अभिमान करता है, पूर्व की मिठास को वेदता है। उससे कहते हैं कि इच्छायें तो लम्बी-लम्बी चलती रहती हैं, पहले उससे छूट तब आनन्द आयेगा।

मूढ़ जीव यह विषयरूपी हलाहल विष जबरजस्ती से खाकर दुर्गति में रखड़ता है। दौड़-दौड़कर चारगति में भटकता हुआ विषयरूपी विष का सेवन करता है। जिसप्रकार उकलती हुई कढ़ाई में पड़े हुये सर्प को मारने के लिये किसी ने उसे निकाला और वह सर्प वहाँ से दौड़कर बचने के लिये चूल्हे में घुस गया और जलकर राख हो गया; उसीप्रकार अज्ञानी जीव ने तृष्णावश स्वयं के चिदानन्द भगवान आत्मा की श्रद्धा छोड़ी, प्रेम छोड़ा, इसमें सुख है – ऐसी दृष्टि छोड़ी तथा विषय में सुख मानकर विषयरूपी विष का सेवन किया; जिसके कारण अनंतभव धारण कर अनन्त दुःखी हुआ; फिर भी नहीं चेता। अनेकों बार देव हुआ, राजा हुआ, साहूकार हुआ, कितने भोग-भोगे; परन्तु शांति न मिली; फिर भी नहीं चेता और उलटा वह तो लेलूँ, यह तो खालूँ – इसप्रकार विषयरूपी विष खाता जाता है और संसार में मूर्खपने रखड़ता रहता है। वास्तव में इसकी मूर्खता का कोई हिसाब

नहीं है।

अधिक क्या कहें ! भोग भोगने की शुरुआत में क्लेश, मध्य में अशांति और अन्त में फिर क्लेश तथा कमाने की आकुलता में भी क्लेश ही होता है। भोग भोगते समय अतृप्ति से और बाद में तृष्णा की लालसा से जीव दुःखी होता है। यह जीव अपनी इज्जत के लिये दुःखी होता है, वह यह नहीं समझता कि यह सब तो पुण्य-पाप का खेल है, उसके साथ अपनी आत्मा का कोई संबंध नहीं है ?

पाँच इन्द्रियों द्वारा भोग-भोगकर वह मानता है कि इससे मुझे सुख हुआ, तृप्ति हुई; परन्तु यह उसकी मिथ्याकल्पना ही है। पुण्य के फल से मुझे लाभ हुआ, जो ऐसा मानता है – उससे कहते हैं भाई ! ऐसी मिथ्यामान्यताओं को छोड़ दे ! शांति का, सुख का धाम तू स्वयं ही है, उसको देख ! तू उसका स्वयं विश्वास कर ! उससे तुझे शांति मिलेगी।

अब शिष्य पुनः प्रश्न करता है कि प्रभु ! आप कहते हैं कि तत्त्वज्ञानी भोग-भोगते ही नहीं, मिथ्यादृष्टि ही भोग भोगते हैं; परन्तु हमने तो शास्त्र में पढ़ा है कि तीन ज्ञान के धारी चक्रवर्ती 96000 स्त्रियों के भोग भोगते थे। क्षायिक समकृती श्रेणिक राजा हजारों रानियों के भोग में पड़ा था, तो फिर हम यह कैसे मान लें कि ज्ञानी भोग नहीं भोगते ?

आचार्यदेव समाधान करते हुये कहते हैं कि भाई ! तू धीरज रख ! तू कहता है कि शास्त्र में ऐसा लिखा है, वह बिलकुल सही है। चक्रवर्ती आदि ज्ञानी जीव भी भोग भोगते हैं; परन्तु वे सुखबुद्धि से नहीं भोगते। उनको तो भोग जहर समान लगते हैं। ज्ञानी को तो आत्मा में सुखबुद्धि होती है, भोगों में नहीं और तुझे तो विषय-भोगने में सुख लगता है, तू तो सुखबुद्धि से भोग-भोगता है – ऐसी भोगों में से सुखबुद्धि छुड़ाने के लिये उपदेश देते हैं। **(क्रमशः)**

निमित्तों को दोष देना ठीक नहीं

समय से पहले और भाग्य से अधिक कभी किसी को कुछ नहीं मिलता। जब ऋषभदेव को आहार प्राप्ति की उपादानगत योग्यता पक गई तो आहार देनेवालों को भी जातिस्मरण हो गया। इससे तो यही सिद्ध होता है कि जब अपनी अन्तर से तैयारी हो तो निमित्त तो हाजिर ही रहता है। पर जब हमारी पात्रता ही न पके तो निमित्त भी नहीं मिलते उपादानगत योग्यता और निमित्तों का सहज ऐसा ही संयोग है। अतः निमित्तों को दोष देना ठीक नहीं है; परन्तु अपनी पात्रता का विचार करना ही कल्याणकारी है। – **पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, पृष्ठ - 58**

ज्ञानस्वभाव की अद्भुत सामर्थ्य

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम प्रवचनसार की 29 वीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

ण पविट्टो णाविट्टो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू ।

जाणदि परस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं ॥ २९ ॥

जैसे चक्षु रूप में अप्रविष्ट रहकर तथा अप्रविष्ट न रहकर जानती-देखती है; उसीप्रकार आत्मा इन्द्रियातीत होता हुआ अशेष जगत को ज्ञेयों में अप्रविष्ट रहकर तथा अप्रविष्ट न रहकर निरंतर जानता देखता है।

यहाँ इस गाथा में आत्मा पदार्थों में प्रवृत्त नहीं होता, तथापि जिस शक्ति वैचित्र्य से उसका पदार्थों में प्रवृत्त होना सिद्ध होता है, उस शक्तिवैचित्र्य को बताया गया है।

यहाँ निश्चय-व्यवहार दोनों की अपेक्षा से बात करते हैं कि आत्मा समभावी सूर्य है; इसलिये वह पदार्थों में प्रवृत्त नहीं होता; तथापि जिस शक्ति वैचित्र्य से उसका पदार्थों में प्रवृत्त होना सिद्ध होता है। उस शक्ति वैचित्र्य का कथन करते हैं।

आत्मा में स्व-परप्रकाशक शक्ति है। वह पर में प्रवृत्त नहीं होता; तथापि जिस शक्ति से आत्मा में पदार्थों का प्रवृत्त होना सिद्ध होता है, उस शक्ति को यहाँ दर्शाते हैं।

जिसतरह चक्षु अग्नि, बर्फ, सर्प, बिच्छु, कोयला, सोना, मिट्टी इत्यादि पदार्थों में प्रवेश किये बिना ही उन पदार्थों को जानती देखती है अर्थात् अग्नि को अग्निरूप जानती है, बर्फ को बर्फरूप जानती है, सर्प को सर्परूप जानती है - ऐसा लगता है कि मानों बर्फ, अग्नि आदि पदार्थ आँखों में प्रवेश कर गये हों अर्थात् जैसे ज्ञेय हैं वैसी आँख परिणामी है, इसलिये कहा कि आँख परपदार्थों में प्रवेश किये बिना नहीं रहती।

शंका - तो क्या आँख रूपी पदार्थों में प्रवेश करती है ?

समाधान - आँख परपदार्थों में प्रवेश नहीं करती; इसलिये अप्रवेशी है और जैसे ज्ञेय है, वैसा जानती है; इसलिये उसे प्रवेशी कहा है। आँख सर्प को सर्परूप जानती है

अर्थात् जैसे पदार्थ हैं, वैसा जानती है; इसलिये आँख उसमें प्रविष्ट है - ऐसा कहते हैं। इसतरह उनका परस्पर सम्बन्ध बताते हैं। इसलिये व्यवहार से कहा कि वह प्रवेश किये बिना नहीं रहती। वास्तव में तो अन्दर प्रवेश नहीं हुआ है- यह निश्चय है और अन्दर प्रविष्ट हुई है - यह व्यवहार है।

उसीतरह आत्मा भी इन्द्रियातीतपने के कारण प्राप्यकारिता की विचारगोचरता से भी दूर होता हुआ, ज्ञेयभूत समस्त वस्तुओं को स्वप्रदेशों से स्पर्श नहीं करता होने से अप्रविष्ट रहकर उन्हें जानता देखता है। प्राप्यकारिता अर्थात् ज्ञेय विषयों को स्पर्श करके ही कार्य कर सकता है, जान सकता है।

1. उन इन्द्रियातीत हुये आत्मा में प्राप्यकारिता के विचार का भी अवकाश नहीं है अर्थात् ज्ञान ज्ञेय के अन्दर पहुँचे तब ही जाने ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है।

2. ज्ञान ज्ञेय के पास जाये तब ज्ञान ज्ञाने ऐसा अवकाश नहीं है।

3. ज्ञान ज्ञेय को प्राप्त होकर जाने - ऐसा भी स्वभाव नहीं है, वह इन्द्रियातीत होकर जानता है।

निश्चय से ज्ञान लोकालोक के जितने भी पदार्थ हैं उन सभी को स्पर्श नहीं करता; उन समस्त पदार्थों में प्रविष्ट हुये बिना ही जानता है - ऐसा ज्ञान का स्वच्छ स्वभाव है।

अब, व्यवहार बताते हैं - आत्मा स्व-परप्रकाशक शक्ति से विचित्र है। आत्मा के सिवाय अन्य में स्व-परप्रकाशक शक्ति नहीं होती। पर के ग्रहण और त्याग का स्वभाव आत्मा का नहीं है; अपितु मात्र पर को जानने का स्वभाव है।

स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातै वचन भेद भ्रम भारी ।

ज्ञेय शक्ति द्विविधा परकाशी, निजरूपा पररूपा भासी ॥

स्व और पर दो ज्ञेय हैं; किन्तु ज्ञान एक ही है। ज्ञान जानने का कार्य करता है; किन्तु अज्ञानी भ्रम से मानता है कि पर से ज्ञान होता है, मैं पर को ही जानता हूँ अथवा मैं पर का और राग का कर्ता हूँ।

वास्तव में ज्ञान का तो मात्र स्व-पर को जानने का स्वभाव है, यही उसका कार्य है। ज्ञान ने समस्त ज्ञेयाकारों को मानों मूल में से ही उखाड़कर ग्रसित कर लिया है। ऐसा लगता है कि जैसे ग्रास छोटा है और मुह बड़ा है। मूल में से उखाड़ डाला है अर्थात् कोई भी ज्ञेय

जानने में बाकी नहीं रहता। लोकालोक में कुछ भी बाकी नहीं रहा, सभी कुछ ज्ञान में आ गया है।

श्री परमात्मप्रकाश शास्त्र में दृष्टान्त दिया है कि जैसे चांदनी (मंडप के ऊपर लगनेवाला कपड़ा) जहाँ तक मण्डप लगा हो वहाँ तक जाती है; किन्तु यदि मण्डल के बांस कम पड़ जावें तो उससे चांदनी की शक्ति कम हो गई है - ऐसा नहीं है; वैसे ही केवलज्ञान की शक्ति तीन लोक रूप मण्डप को जान लेती है, उसने लोकालोक को तो जान लिया है और अन्य ज्ञेय नहीं है; इसलिये केवलज्ञान की शक्ति समाप्त नहीं हो गई है; किन्तु केवलज्ञान की शक्ति उससे भी अनंतगुणी अधिक है। लोकालोक तो केवलज्ञानरूपी आकाश में एक नक्षत्र समान है। जैसे एक नक्षत्र लोकालोक में बिन्दु है वैसे ही लोकालोक केवलज्ञान में नक्षत्र मात्र ही है। इसलिये केवलज्ञान का स्वरूप वचनातीत है, जिसे स्वयं भगवान भी नहीं कह सकते; क्योंकि वह ज्ञानगम्य है, वाणीगम्य नहीं।

पूर्ण स्वभाव के आश्रय से ज्ञान की जो पूर्ण पर्याय प्रकट हुई, वह ज्ञान कैसा है ?

तो कहते हैं कि लोकालोक केवलज्ञान में नक्षत्र समान स्पष्ट जानने में आता है।

1. जिसतरह पुद्गलद्रव्य सूक्ष्म परिणमन करके आकाश के एक प्रदेश में आवे तो आकाश के एक प्रदेश में सभी को एकसाथ अवगाहन देने की शक्ति है।

2. सभी जीव-पुद्गल पदार्थ एकसाथ गमनपूर्वक स्थिर हों तो सभी को एक समय में स्थिति में निमित्त होने की ताकत अधर्मद्रव्य में है।

3. यदि सभी पुद्गल द्रव्य कालाणु के प्रदेश में आ जायें तो उन सभी को एकसाथ एक समय में परिणमन में निमित्त हो - ऐसी सामर्थ्य प्रत्येक कालाणु में है।

4. एक परमाणु एक समय में चौदह राजु गमन कर सकता है, एक परमाणु में एक गुणा सफेद में से अनन्त गुणा सफेद होने की शक्ति है। अनन्त गुण काले से वह अनन्त गुण सफेद हो जाता है;

उसीतरह अनन्त लोकालोक हों तो उन सभी को एकसमय में जानने की ताकत केवलज्ञान की है। यदि कोई कहे कि ऐसा कैसे हो सकता है ? तो उससे कहते हैं कि स्वभाव में यह प्रश्न नहीं होता। निमित्त अथवा परपदार्थ हो तो स्वभाव होता है - यह बात भी नहीं है। ज्ञान स्वभाव पर्याय में पूर्णरूप प्रगट हुआ है।

(क्रमशः)

समयसार परिशिष्ट प्रवचन

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है &

उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे)

शरीर-मन-वाणी या राग आत्मा के धर्म का आधार नहीं है तथा आत्मा उन शरीर-मन-वाणी का या राग का आधार नहीं है; वास्तव में आत्मा अपनी निर्मलपर्याय का ही आधार है। जिसने अपने स्वभाव को ही अपना आधार बनाया, उसे स्वभाव के आधार से निर्मलपर्याय ही होती हैं; स्वभाव के आधार से मलिनपर्याय नहीं होती, इसलिए निर्मलपर्याय का ही आधार होना आत्मा का स्वभाव है; मलिनता का आधार होना आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके आधार से दुःख की उत्पत्ति होती ही नहीं; उसके आश्रय से तो आनन्द की ही उत्पत्ति होती है। धर्मी की श्रद्धा में अपने शुद्ध आत्मा का ही आधार है और उसके आधार से उसे निर्मलपर्याय ही होती रहती हैं।

देखो, आचार्यदेव ने छह शक्तियों में आत्मा का ही छह कारकों रूप से वर्णन किया है। आत्मा ही अपना कर्म, आत्मा ही अपना कर्ता, आत्मा ही अपना करण, आत्मा ही अपना सम्प्रदान, आत्मा ही अपना अपादान और आत्मा ही अपना अधिकरण - इसप्रकार छहों कारण आत्मा से अभिन्नरूप हैं। निमित्तरूप छह कारकों का आत्मा में त्रिकाल अभाव है और इन स्वभावरूप छह कारकों का आत्मा में त्रिकाल सद्भाव है; इसप्रकार छह कारकों की छह विभक्तियाँ और एक संबंध विभक्ति-यह सातों विभक्तियाँ आत्मा को पर से विभक्त बतलाती हैं।

देखो, यह आत्मा के धर्म का आधार बतलाते हैं। 'निरोगी शरीर हो, आँख-कान आदि इन्द्रियाँ स्पष्ट हों, पैसा मकान आदि की सुविधा हो तो उसके आधार से धर्म होता

हैं' - ऐसा कोई माने तो आचार्यदेव उससे कहते हैं कि तू मूढ़ है; क्या तेरे आत्मा में तेरे धर्म का आधार हो - ऐसी अधिकरणशक्ति नहीं है जो तुझे दूसरों का आधार लेना पड़े ? भाई, तेरा आत्मा ही तेरे धर्म का आधार है; तेरा असंख्यप्रदेशी चैतन्यक्षेत्रा ही तेरे सम्यग्दर्शनादि धर्म का आधार है; इसके सिवा बाह्यक्षेत्रा के आधार से तेरा धर्म नहीं है। 'अहो ! महाविदेहक्षेत्रा में तो धर्म का स्रोत बह रहा है;' - इसप्रकार जहाँ महाविदेहक्षेत्रा की बात आये वहाँ मानो उस क्षेत्रा के आधार से ही धर्म होगा - इसप्रकार अज्ञानी की दृष्टि बाह्य में जाती है; किन्तु उस महाविदेह क्षेत्रा में विचरनेवाले धर्मात्मा स्वयं तो ऐसा जानते हैं कि हमारा असंख्यप्रदेशी चैतन्यमूर्ति आत्मा ही हमारे धर्म का आधार है, यह बाह्यक्षेत्रा कहीं हमारे धर्म का आधार नहीं है - ऐसा जानने के पश्चात् व्यवहार से धर्म का बहुमान करने के लिए ऐसा कहा जाता है कि 'अहो ! महाविदेहक्षेत्रा तो धर्म की भूमि है, उस भूमि के आधार से सीमंधरादि तीर्थकर तथा लाखों केवली भगवन्त और करोड़ों सन्त साक्षात् विचर रहे हैं।

उसीप्रकार मोक्षगामी सन्तों का स्मरण करने के लिए भक्ति से ऐसा कहा जाता है कि - 'अहो ! इस सम्मोदशिखर सिद्धक्षेत्रा के आधार से तो अनन्त तीर्थकरों और सन्तों ने मोक्ष प्राप्त किया है, यह तो शाश्वत तीर्थ है और इसका प्रत्येक रजकण पूज्य है।' - ऐसी भक्ति को कब सच्चा व्यवहार कहा जाता है ? जब तीर्थकर और सन्त चैतन्यस्वभाव को अधिकरण बनाकर जिस भाव से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं उस भाव को जानकर अपने में भी वैसा भाव प्रगट करे। ज्ञानी को ऐसी भावना होती है कि अहो ! ऐसा स्वावलम्बी भाव प्रगट करके पूर्वकाल में अनन्त तीर्थकरों और सन्तों ने यहाँ से मोक्ष प्राप्त किया है; इसप्रकार इसमें तो स्वावलम्बी भाव की प्रधानता आती है। ऐसे स्वावलम्बी भाव को जाने बिना मात्रा बाह्य क्षेत्रा को ही अपनी मुक्ति का आधार मानकर उसी का बहुमान करता रहे तो उसे मात्रा पुण्यबंध होगा; किन्तु धर्मलाभ नहीं हो सकता। धर्म तो चैतन्यस्वभाव के आधार से ही होता है।

जिसप्रकार लकड़ी के मुलायम टुकड़े पर गहने नहीं गढ़े जाते; उसके लिए तो लोहे की एरन का आधार होना चाहिए; उसीप्रकार शरीर - इन्द्रियाँ या रागादि तो मुलायम हैं उनके आधार से धर्म की गढ़ाई (धर्म का निर्माण) नहीं हो सकती। कठिन चैतन्यघन आत्मस्वभाव के आधार से ही धर्म की गढ़ाई - धर्म का निर्माण होता है।

इन छह कारक शक्तियों के वर्णन द्वारा तो आचार्यदेव ने स्वपर को एकदम विभक्त बतलाकर भेदज्ञान कराया है। आत्मा स्वयं ही अपनी शक्ति से छह कारकरूप होता है;

अन्य कारकों की उसे अपेक्षा नहीं है।

निमित्त आत्मा का कर्ता नहीं है। निमित्त आत्मा का कर्म नहीं है। निमित्त आत्मा का साधन नहीं है। निमित्त आत्मा का सम्प्रदान नहीं है। निमित्त आत्मा का अपादान नहीं है। निमित्त आत्मा का अधिकरण नहीं है।

आत्मा स्वयं स्वभाव से ही अपने भाव का कर्ता है; स्वयं ही कर्म है, स्वयं ही करण है, स्वयं ही सम्प्रदान है, स्वयं ही अपादान है और स्वयं ही अधिकरण है। अपनी शक्ति से स्वयमेव छह कारकरूप होकर सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होता है।

प्रश्न - सम्यग्दर्शन का आधार कौन ?

उत्तर - शरीर, लक्ष्मी या इन्द्रियाँ सम्यग्दर्शन का आधार नहीं हैं, शुभभाव भी उसका आधार नहीं है और पर्याय के आधार से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता; अधिकरण शक्ति से परिणमित आत्मा सम्यग्दर्शन का आधार होता है। सम्यग्दर्शन भाव्यमान भाव है और आत्मा उसका आधार है। धर्मी जीव अपने आत्मस्वभाव को ही आधाररूप से भाता है; अपने स्वभाव का ही आधार लेकर सम्यग्दर्शनादि रूप से परिणमित होता है; इसके अतिरिक्त व्यवहार का, राग का या निमित्त का आधार धर्मी नहीं मानते।

एक ओर कहें कि आत्मस्वभाव के आधार से धर्म होता है और फिर कहें कि निमित्त के आधार से भी धर्म होता है तो यह दोनों बात परस्पर विरोधी हैं। वास्तव में आत्मस्वभाव के आधार से ही धर्म होता है। जो निमित्त के आधार से धर्म मानता है, उसने धर्म के सच्चे आधाररूप आत्मस्वभाव को माना ही नहीं। व्यवहार का-राग का या निमित्त का आधार लेने से तो विकार की ही उत्पत्ति होती है और यदि उसे धर्म का कारण मानें तो मिथ्यात्व होता है और आत्मस्वभाव के आधार से निर्मलपर्याय की ही उत्पत्ति होती है; इसलिए आत्मा ही निर्मल पर्याय का आधार है। यहाँ आधार और आधेय (द्रव्य और पर्याय) दोनों भिन्न नहीं; किन्तु अभेद हैं। जिसप्रकार स्वर्ण के आधार से जितने गहने गढ़ना हों उतने तथा जैसे गढ़ना हों वैसे गढ़ जाते हैं; उसीप्रकार आत्मस्वभाव के आधार से जितनी निर्मल पर्याय करो उतनी तथा जैसी करना हो वैसी होती हैं। सम्यग्दर्शन से सिद्धपद तक की समस्त निर्मल पर्यायों का आधार होने की शक्ति आत्मस्वभाव में है। आत्मा स्वयं आधाररूप से ध्रुव रहकर अपने ही आधार से सम्यग्दर्शन आदि पर्यायरूप होता है - ऐसा आत्मा ही परम शरणभूत है। जो जीव ऐसे आत्मस्वभाव का आधार लेता है वह रत्नत्राय और सिद्धपद को प्राप्त कर लेता है और जो जीव आत्मस्वभाव का आश्रय छोड़कर पर का आधार लेने जाता है, वह निराधाररूप से संसार में परिभ्रमण करता है।

(क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : मोक्षमार्ग तो दो प्रकार का है न ?

उत्तर : मोक्षमार्ग दो प्रकार का है - एक व्यवहार और दूसरा निश्चय । निश्चय तो साक्षात् मोक्षमार्ग है, व्यवहार परम्परा है । अथवा सविकल्प-निर्विकल्प के भेद से निश्चय मोक्षमार्ग भी दो प्रकार का है । मैं अनन्तज्ञान स्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ, एक हूँ, अखण्ड हूँ, ध्रुव हूँ - ऐसा सविकल्प निश्चय मोक्षमार्ग है और उसे साधक कहा है तथा सविकल्प चिन्तन छूटकर निर्विकल्प आत्मानुभव होना निश्चय मोक्षमार्ग है और वह साध्य है ।

रहस्यपूर्ण चिट्ठी में कहा है कि प्रथम मैं शुद्ध हूँ आदि चिन्तन से आत्मा में अहंपना धारण करता है तत्पश्चात् वह विकल्प भी छूटकर निर्विकल्प होता है । इस रीति से सविकल्प चिन्तन माने सविकल्प निश्चय मोक्षमार्ग को साधक कहा और निर्विकल्प ध्यान को माने निर्विकल्प निश्चय मोक्षमार्ग को साध्य कहा है ।

जैसे देव-गुरु-शास्त्र की रागमिश्रित श्रद्धा को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है; किन्तु वह सम्यक्त्व है ही नहीं, है तो वह राग; परन्तु सम्यक्त्व का आरोप करके उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कह दिया है; वैसे ही यहाँ निश्चय मोक्षमार्ग का आरोप करके सविकल्प चिन्तन को सविकल्प मोक्षमार्ग कहा है । स्व के आश्रय का विकल्प है; इसलिये उसे साधक कहा है । यहाँ विकल्प है तो बंध का ही कारण; तथापि निश्चय का आरोप करके उसे साधक कहा है । मैं शुद्ध हूँ आदि निश्चय के सविकल्प चिन्तन को निश्चयनय का पक्ष कहा है न ! उसी प्रकार यहाँ भी आरोपित कथन किया गया है ।

प्रश्न : बंध का कारण परद्रव्य और मोक्ष का कारण स्वद्रव्य है न ?

उत्तर : बन्ध का कारण परद्रव्य नहीं है; क्योंकि परद्रव्य तो सदा विद्यमान है । यदि वह बंध का कारण हो तो निर्बन्धदशा कभी प्राप्त नहीं हो सकती । वास्तव में परद्रव्य के प्रति स्वामित्वभाव ही बंध का कारण है । स्वद्रव्य भी अनादि से ही है; तथापि मोक्ष आज तक नहीं हुआ; अतः स्वद्रव्य में स्वामित्वभाव होना मोक्ष का कारण है । स्वद्रव्य में स्वामित्व हो जाने पर यद्यपि परद्रव्य विद्यमान है; तथापि वह बंध का कारण नहीं है, उससे बंध नहीं

होता; अतः सिद्ध हुआ कि स्वद्रव्य में स्वामित्व मोक्ष का और परद्रव्य में स्वामित्व बंध का कारण है ।

प्रश्न : मोक्ष का कारण परमपारिणामिक भाव है या क्षायिक भाव ?

उत्तर : वास्तव में तो परमपारिणामिक भाव ही मोक्ष का कारण है; किन्तु पर्याय से कथन करना हो तो क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम को भी मोक्ष का कारण कहा जाता है ।

प्रश्न : मार्ग की यथार्थ विधि का क्रम क्या है ?

उत्तर : आत्मा अचिन्त्य सामर्थ्यवाला है, उसमें अनंत गुणस्वभाव हैं, उसकी रुचि हुये बिना उपयोग पर में से पलटकर स्व में नहीं आ सकता । पाप भावों की रुचि में जो जीव पड़ा है, उसकी तो यहाँ चर्चा ही नहीं है; यहाँ तो पुण्य की रुचि वाला बाह्य त्याग करे ! तप-शील संयमादि पालन करे ! द्रव्यलिंग यथाविधि धारण करे; तथापि जहाँ तक पर की रुचि अन्तर में पड़ी है, वहाँ तक उपयोग पर की ओर से पलटकर स्वस्वभाव की ओर नहीं आ सकता; इसलिये पर की रुचि की दिशा बदलने पर ही उपयोग पर से हटकर स्व में आ सकता है । मार्ग की यथार्थ विधि का यही क्रम है ।

प्रश्न : प्रथम अशुभराग टाले और शुभराग करे, पश्चात् शुद्धभाव हो - ऐसा क्रम है न ?

उत्तर : नहीं भाई ! यह क्रम ही नहीं है । प्रथम सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, पश्चात् एकदम शुभराग टल नहीं सकता; इसलिये पहले अशुभराग टलकर शुभराग आता है - यह साधक के क्रम की बात है ।

प्रश्न : मध्यस्थता का क्या अर्थ है ? क्या परद्रव्य के समक्ष देखने से मध्यस्थता हो सकती है ?

उत्तर : परद्रव्य के सामने देखते रहने से मध्यस्थता नहीं होती । स्वद्रव्य में लीनता करने पर समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थता हो जाती है । स्वद्रव्य में लीन रहना, वह अस्ति और परद्रव्य से मध्यस्थता होना, वह नास्ति है ।

मैं समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थ होता हूँ - ऐसा कहा है । इसमें देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, नवतत्त्व का ज्ञान, पंच महाव्रतरूप व्यवहार रत्नत्रय का आश्रय - सभी निकाल दिया है । व्यवहार-रत्नत्रय भी परद्रव्य के अवलम्बन से है; इसलिये उसके प्रति भी मैं मध्यस्थ हूँ अर्थात् उस व्यवहार-रत्नत्रय का अवलम्बन छोड़कर अभेद आत्मा का ही आश्रय करता हूँ । शास्त्र में जहाँ व्यवहार-रत्नत्रय को निश्चय का कारण कहा हो, उसे उपचार का कथन जानना चाहिये । यहाँ व्यवहार-रत्नत्रय को हेय कहकर उसका आश्रय छुड़ाया है; क्योंकि वास्तव में व्यवहार-रत्नत्रय, निश्चय-रत्नत्रय का कारण नहीं है । निश्चय रत्नत्रय का कारण तो द्रव्यानुसारी परिणति ही है । व्यवहार रत्नत्रय तो शुभोपयोगरूप है; जबकि निश्चय रत्नत्रय शुद्धोपयोगरूप है ।

पू. गुरुदेवश्री की पुण्यतिथि पर विचार गोष्ठी सम्पन्न

जयपुर : यहाँ पण्डित टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 24 नवम्बर को पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की पुण्य तिथि पर उनके स्मरणार्थ 'पूज्य कानजीस्वामी का जीवन परिचय' नामक एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने पूज्य गुरुदेव के सम्पूर्ण जीवन एवं उनके द्वारा प्रतिपादित जिनागम के महत्वपूर्ण विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये।

समारोह की अध्यक्षता करते हुये महाविद्यालय के प्राचार्य पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ने अपने उद्बोधन में कहा कि - स्वामीजी ने द्रव्यानुयोग की संगति तीनों अनुयोगों के साथ मिलाकर अध्यात्म को सम्पूर्ण जैन समाज के सामने प्रस्तुत किया।

मुख्यअतिथि के रूप में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने बताया कि आज से 112 वर्ष पूर्व जिन विषम परिस्थितियों में स्वामीजी ने आचार्यों के ग्रन्थों को पढ़कर उनके भावों को जिस गहराई के साथ प्रस्तुत किया, वह अनुकरणीय है। हमारी आज की परिस्थितियाँ तो उसकी अपेक्षा से अत्यन्त सुलभ एवं अनुकूल हैं। अतः उनके जीवन से प्रेरणा लेते हुये हमें उग्र पुरुषार्थ के माध्यम से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

इस अवसर पर श्री हुकमचन्दजी जैन, चेन्नई ने भी अपने विचार व्यक्त किये। अन्त में गुरुदेवश्री के सम्पूर्ण जीवन परिचय से सम्बन्धित काव्यात्मक रचनायें प्रस्तुत की गईं।

सभा का संचालन पण्डित प्रवीणकुमारजी शास्त्री रायपुर ने तथा संयोजन पण्डित जितेन्द्रकुमारजी राठी ने किया। अन्त में पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने आभार व्यक्त किया।

सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन

गजपंथा : यहाँ दिनांक 7 से 13 नवम्बर 2002 तक श्रीमती संजीवनी सुभाषचन्द शाह, पुणे द्वारा श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन किया गया; जिसमें प्रातः पूजन के पश्चात् डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी के समयसार गाथा-12 पर मार्मिक प्रवचन हुये। इस प्रसंग पर ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद एवं डॉ. सुमतिचन्दजी मलकापुर के प्रवचनों का लाभ भी समाज को मिला।

विधान का उद्घाटन डॉ. किरणभाई शाह ने तथा झण्डारोहण श्री महेन्द्रभाई एवं अनिलभाई कामदार मुम्बई परिवार ने किया। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद के निर्देशन में पण्डित मनीषकुमारजी शास्त्री एवं पण्डित अमरचन्दजी ग्वालियर ने सम्पन्न कराये।

30● जनवरी, 2003 (9)

डॉ. भारिल्ल : अहिंसा चैनल पर

कोलकाता : शीघ्र प्रारंभ होने जा रहे, अहिंसा चैनल पर जैन आगम के मनीषी विद्वान तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल एवं केन्द्रीय राज्यमंत्री माननीय तपन सिकदर की 'अहिंसा' विषय पर सारगर्भित वार्ता विगत दिनों रिकार्ड की गई। वार्ता का संयोजन साधना जैन द्वारा किया गया। स्मरण रहे कि इसीप्रकार की शाकाहार विषय पर भी वसुमति डागा के संयोजन में डॉ. भारिल्ल एवं कोलकाता विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त प्रोफेसर डॉ. बनर्जी की विशेष वार्ता रिकार्ड की गई थी। यह वार्तायें अतिशीघ्र अहिंसा चैनल के माध्यम से प्रसारित की जायेंगी।

प्रवचनमाला सम्पन्न

होशंगाबाद (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 1 से 4 दिसम्बर 2002 तक आध्यात्मिक संत श्री तारणस्वामी की 554वीं जन्मजयन्ती समारोह के अवसर पर स्व. श्री गुल्लेदादा की स्मृति में आध्यात्मिक प्रवचनमाला का आयोजन किया गया; जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के दोनों समय 'भगवान आत्मा' विषय पर मार्मिक प्रवचन हुये। डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों के पूर्व दोनों समय टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के उपमन्त्री पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा के 'उपदेश शुद्धसार' पर तथा दोपहर में 'नियमसार' पर प्रवचन हुये।

कार्यक्रम के अंतिम दिन तारण-तरण दिगम्बर जैन समाज तथा कुन्दकुन्दाचार्य प्रतिभा सम्मान परिवार होशंगाबाद द्वारा दोनों विद्वानों को अभिनन्दन पत्र तथा शॉल भेंट किये गये।

दोनों ही संस्थाओं ने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का आभार माना तथा भविष्य में पुनः पधारने का आमंत्रण दिया।

इस अवसर पर 14 हजार 600 रुपये का सत्साहित्य एवं 746 घण्टे के प्रवचनों के सी.डी एवं ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे।

श्री धनकुमार जैन शास्त्री को पीएच.डी की उपाधि

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के भूतपूर्व स्नातक श्री वि. धनकुमारजी जैन शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य को राजस्थान विश्व-विद्यालय जयपुर ने डॉ. शीतलचन्द जैन के निर्देशन में लिखे गये शोधप्रबन्ध **आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन** विषय पर पीएच.डी. (विद्यावारिधि) की उपाधि प्रदान की; एतदर्थ महाविद्यालय परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक बधाई !

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

ग्वालियर	- 13 से 19 जनवरी 2003	पंचकल्याणक
अजमेर/किशनगढ़	- 22 से 26 जनवरी 2003	व्यक्तिगत कार्य
अलीगढ़	- 31 जनवरी से 6 फरवरी 2003	पंचकल्याणक
दिल्ली	- 8 एवं 9 फरवरी 2003	विद्वत्परिषद का अधिवेशन
कोटा	- 14 एवं 15 फरवरी 2003	शिलान्यास

वीतराग-विज्ञान ● 31

